देसवाली में ईश्वर

डॉ. जसबीर चावला

देसवाली में ईश्वर

(कविता-संग्रह)

डॉ. जसबीर चावला

बोधि
साहित्य जन-जन के लिए

बोधि
साहित्य जन-जन के लिए

बोधि प्रकाशन
सी-46, सुदर्शनपुरा इंडस्ट्रियल एरिया एक्सटेंशन
नाला रोड, 22 गोदाम, जयपुर-302006
फोन : 0141-2213700, 9829018087
ई-मेल : bodhiprakashan@gmail.com

कॉपीराइट © डॉ. जसबीर चावला

प्रथम संस्करण : 2020

ISBN :

कम्प्यूटर ग्राफिक्स : बनवारी कुमावत 'राज'

आवरण संयोजन : बोधि टीम

मुद्रक
तरु ऑफसेट, जयपुर

मूल्य : ₹ 150/-

DESWALI MEIN ISHWAR (POETRY) by Dr. Jasbir Chawla

भारत माता को

अनुक्रम

शिमला के वृक्ष सुंदरी	13
शाम-ए-शिमला	14
चेतक	15
आवाज़ों की आवाज़ें	17
विक्षोभ	20
वाटसैप नशा	21
विश्व जल-दिवस	22
बुरेहाल पत्ते-किताबें-कलमें-जूते	23
धूप ते हवा में पढ़ती गोरी	25
सेल्फी के पहले	26
खिलौना	27
वक्त की गिनती	28
लो जारी हो गया फरमान	29
दरवाजों पर जूते	30
इतिहास हार-जीत का	31
रूम नंबर-1, राजपुताना छात्रावास की आलमारी	32
डाई	34
सर्जीकल ऑप्रेशन	35
दबे-गीले-सूखे	36
करण	37
देसवाली में ईश्वर	38
लंबी यात्रा शुरू होने वाली है	40
खोल वह रहे हैं जो बंद नहीं है	41
एक जून खाता शायर	42
जिसको धोते हैं वही साफ होती है	43
एक्स्ट्रा	44
तुम लोगों के पास उम्र है	45
बहुतों के बहुत सारे पैगाम आये	46
छाया को ऐसे खोजते हो	47
मन की कौन जानता है	48
दरवाज़ा बंद तो बीमारी बंद	49
कपड़े बारिश हजम कर लेंगे	50
न तो नासा से कह सकता	51
वक़्त को देखा है	52
फसलें पक रही हैं	53
यह एक ऐसी धूप है	54
जा चुके ससामान	56
अमरीकन अम्बैसी	57
मोसूल	58
शहतूत का पेड़	59
अब चाय इतनी बच चुकी है	60
शहतूत झकझोरवा है	61
अब कोई क्या करे	62
जगह-जगह है	63
ओसीली घास पर चलने वालो	64
इस वेले	65
क्या इनका अस्तित्व इसलिये बना था	66
दो तस्वीर : एक	67
दो तस्वीर : दो	68

न आँधी पे बस है	69
पंचकूला-प्रवेश	70
पहाड़ों का दर्द समझेगा कौन	71
दुकानदार ख्याल रखता है	72
कुछ नया तो हो नहीं रहा	73
जहाँ कोई नहीं रहता	75
रोजहाट	77
छाया-रस्सी	78
48	79
कालचक्र	80
कलकत्ते की गर्मी	81
थोड़ी वया ना पछी	82
गर्मी कह रही है	85
चक्रव्यूह	87
काँचीपुरम्	88
वल्लमकली	89
31 दिसंबर सूरज नाल	90
सर्दियों में	91
धूप को क्या पता	92
ड्रामा	93
पछुआ	94
सागर	95
अलार्म	96
चाँद सिर पर है आधाकटा	97
बंगाल की खाड़ी	99
ऐसे मोहरे हो	100
सवारी	101
बीबी का मकबरा	102
सिद्धार्थ उद्यान	103
आधे दुख नींद झाड़ देती है	104
धूप इन दिनों	105
इतिहास	106
आँख बंद होते ही	107
आवाजें कई हैं	108
उमस जारी है	109
देखत-देखत	110
गॉड इज़ वन	111
संसार में कोई ऐसा विदेश है	112

अपनी बात

ईश्वर अबूझ है। कई-कई तरीकों से उसे समझने की कोशिशें होती रही हैं। नानक कहते हैं-

असंख जप असंख भाव। असंख पूजा असंख तप ताव।
असंख ग्रंथ मुख वेद पाठ। असंख जोग मन रहे उदास।
असंख भगति गुन ग्यान विचार। असंख सती असंख दातार।

(जपुजी साहिब)

बाकी एक गँवार-निरक्षर-अनपढ़ आदमी उसे कैसे समझ अपनी देसवाली बोली में बताता वही इस संग्रह का शीर्षक भी है; स्वर भी। फलसफा वही है। ईश्वर कहते हैं हर कण, हर पल मौजूद है। हर जगह वही है, अंदर भी, बाहर भी। इसलिये ईश्वर को इन कविताओं में शामिल करके अथवा इनसे अलग रख भी पढ़ा जा सकता है।

अधिकांश कवितायें हमारे रोज़मर्रा, आस-पास की हैं। आँखों-देखी, कानों-सुनी, नाकों-सूँघी, हाथों-छुई, स्वादों-चखी, अखबारों-पढ़ी, चैनलों-देखी, सोशल मीडियाओं-गही। अतः कल्पनायें, चिंतायें, पीड़ायें, वर्जनायें, मानसिकतायें, सब मौजूद हैं, कई-कई रंगों में। सुधी पाठकों को विविधता में एकता के दर्शन होंगे। पूरी मानवता के लिये ही यह कवि-कर्म समर्पित है।

अच्छा या बुरा, जो भी है, आपके हाथों में है। भारतीय भाषाओं के जो शब्द बोलचाल में हैं, उन्हें अपनाते कोई हिचक नहीं हुई।

-जसबीर चावला

पहली चेत
552वां नानक संवत्

शिमला के वृक्ष, सुंदरी!

ये वृक्ष हैं, तुम सुंदरी।
तुम्हारी तरह नहीं चल सकते।

ठीक है सब शिमला निवासी हैं
पर खूबसूरती कहाँ टिकी है?

ये रुके हैं, तुम चढ़ रही हो
साँसों में ये प्राण-वायु छोड़ रहे हैं
तुम ऊपर पहुँच जाओगी
ये यहीं रहेंगे,
और सुंदर हो जाओगी
तब भी यहीं रहेंगे!
लौटोगी इसी रास्ते, यहीं पाओगी
घर पहुँच सुंदरतम हो जाओगी।
प्राणवायु रोककर यहीं खड़े रहेंगे
रात भर।

शिमला के वृक्ष फिर जी उठेंगे पा
इसी चढ़ाई पर सुंदरी।

शाम-ए-शिमला

लो, पर्दे भी चढ़ा दिये
निंद्रा[1] भी चुप हो गया
आधा चाँद भी खिल उठा
आधा शिमला भी जगमगा उठा!

शाम वहीं खड़ी प्यासी की प्यासी
टलती ही नहीं दुआरी पर से
कोई उसे दो पिला।
मन की अंगुलियाँ डँसी बिच्छूबूटी जैसे
सहलायी ही क्यूँ री अँखियों, ऐसी रूपसी?
चीखे टिटहरी शाम बिन कारे बदरा!
रुक गई पहाड़ों पर ही, उतरती नहीं हवा!
क्यों गढ़ी ऐसी जवानी कुदरत ने ख्वामखाह
शाम टलती ही नहीं दुआरी पर से!
शिमला को क्या मिला?
दूर है अभी तो मंज़िल, कई चढ़ाईयाँ हैं,
ज़ख्मी पहाड़, पेड़ों की रुलाईयाँ हैं
जल्लादों की तरह बंद-बंद काटा है, मशीनों से
कौन-सी दवा दोगे इतनी दुश्मनी निभा?
मुझे इतने सैलानी दो, शिमले ने था कब कहा?
उसके मित्रों को काट-काट बना दिया समोसा!
शाम टलती ही नहीं दुआरी पर से
किसी सूरत उसे दो हिला।

---

1. निंद्रा = एक कीट जो शाम ढलते एकतार आवाज करता है, पेड़ पर।

चेतक

पेट्रोल होता है जब तक, चलता है चेतक
रिर्ज़व में आते हिनहिनाता है,
चाल सरपट नहीं रहती
दिया बुझने से पहले जैसे चड़चड़ाता है,
फिर थम जाता है वह भी।

ऐंठ घुमानी पड़ती है कला जैसे ढिबरी की
तेल छुआना पड़ता है चेतक की नाक... चिंहुकता है
फिर मुलायम थपथपाते पीठ उसकी
झुकाना पड़ता है अपनी तरफ!
और ऐड़ी ठेकाते
प्रतिशोध की ज्वाला से भभक उठता है-
''मुझे सूँड को लहराने दो जसबीर राणा!
मेरी तलवार नागनी लौटा दो!
तुम्हारा भाला चूकता है तो चूके!
गरदन उतार फेंकता उस भैण-विक्रेता मान सिंह की
कसम है हल्दीघाटी की!
मेवाड़ से पहले मेरा सर्वस्व हो निछावर।''

शांत वीर! इतिहास बदल चुके, मिट्टी हो चुके भूगोल
समाधि में आत्मायें नहीं समाईं,
भीर पड़े धीरों ने कभी पीठ नहीं दिखाई।

अभी देखकर छाया कोई, उसके तल सुस्ता लो
निकट कहीं जो पंप याद हो, सौ का तेल डला लो।

हमें पहुँचना है गढ़ अपने, घेर दिसे[1] महँगाई
ताने देती अमर युवा को, कितनी तेरी कमाई?

---

1. दिसे (पंजाबी) = दिखे

आवाज़ों की आवाज़ें

दरवाज़ा खुलते हुए वैसी आवाज़ नहीं करता जैसी बंद होते
टपकता पानी वैसी आवाज़ नहीं करता जैसी बहते
थकते, बदन वैसी आवाज़ नहीं करता जैसी सुस्ताते
दुखते, दिल वैसी आवाज़ नही करता जैसी सहलाते!

ताला खुलते एक और आवाज़ देता है, बंद होते दूसरी
डूबी ईंट और मूड़ी अलग–अलग आवाज़ करती हैं
गिलास और बोतल से गटकने की अलग–अलग होती है आवाज़
खाने से पहले और बाद के कुल्ले अलग–अलग आवाज़ में होते हैं

उँगलियाँ चटखाने की आवाज़ अलग होती है अंगूठों से
बच्चे और बूढ़े के पाद अलग–अलग आवाज़ों के होते हैं
हार्डवेयर का शटर अलग आवाज़ करता है हलवाई के शटर से
दारू की ठेपी अलग आवाज़ करती है दवाई की ठेपी से
बीयर का चिप्पू अलग करता है कोक के से!

सूखते कपड़े अलग आवाज़ करते हैं गीलतों से
जूही चिटखती अलग आवाज़ देती है चंपा से
आँखों की वैसी आवाज़ नहीं होती पुकारते जैसी अधर की
ख़ामोशी शुरू होते वैसी आवाज़ नहीं करती जैसी खुलते
इच्छाओं की वैसी आवाज़ नहीं होती जैसी घिन की!

कलाई और दीवाल घड़ी के काँटों की अलग होती है आवाज़
नाक के बजने और कान के बजने में अलग होती है आवाज़
पैंट के फटने और कमीज के फटने की अलग होती है आवाज़
जूते के सिलने और किताब के सिलने की अलग होती है आवाज़

औरत और मर्द के गरारों की आवाज़ अलग–अलग होती है
बूढ़े और जवान के खर्राटों की आवाज़ अलग–अलग होती है
छिपकली और साँप की फुत्कारें अलग होती हैं आवाज़ में
केंचुए और चींटे के रेंगने में अलग–अलग होती हैं आवाज़!

प्लास्टर के और चूने के झड़ने में अलग–अलग होती है आवाज़
ट्यूब के और बल्ब के जलने में अलग–अलग होती है आवाज़
तेलचट्टे और तितली के पंखों की फड़फड़ अलग–अलग होती है
घोड़े और ऊँट के सरपट की अलग–अलग होती है आवाज़!

पगड़ी की सीवन और लुंगी की सीवन में है अलग–अलग आवाज़
बिस्तर लगाने और तकिया लगाने में है अलग–अलग आवाज़
चादर बिछाने और मेजपोश बिछाने में है अलग–अलग आवाज़
दाढ़ी छीलने और काँख छीलने में है अलग–अलग आवाज़!

कागज़ कतरने और कपड़ा कतरने में है अलग–अलग आवाज़
पोस्टर साटने और टिकट साटने में है अलग–अलग आवाज़!

कान उमेठने की आवाज़ अलग होती है बाँह उमेठने से
आँखें तरेरने की आवाज़ अलग होती है आँखें मटकाने से
मूँछें मरोड़ने की आवाज़ अलग होती है हाथ झटकाने से
गोंद से चिपकाने की आवाज़ अलग होती है थूक से चिपकाने से

चूहों की आवाज़ अलग होती है पेट में कूदते, बिल में कूदते
आवाज़ो से आवाज़ों को खोल सकते हो कान देकर
कानों में कान देकर आवाज़ों की आवाज़ें नहीं सुनतीं
बदशक्ल आवाज़ों में चिड़ियों की चहचहाहट शामिल नहीं
जैसे घुँघरू-तबले और वाद्य-यंत्रों की सुरीली आवाज़ें हैं।

विक्षोभ

क्षितिज से पर्दे सरका देता है सूरज
झाँकता है?
क्या कर रही है पृथ्वी और क्या कर रहे उसके वाशिंदे?
तब हम अपनी खिड़कियों से उसी तरह सरका देते हैं पर्दे
झाँकते हैं?
क्या कर रहा है सूरज और उसके कारिंदे?
आँखें मिलाते हैं और निकल पड़ते हैं
हाल-चाल पूछने
गुमसुम बच्चों का, गुमशुदा बच्चों का।
फुटपाथ पर जो भी मिलते हैं
उसे गुब्बारा थमाते हैं।
वह खुश हो जाता है!
बैग में खिलौने भी हैं
नहीं खुश होता बेलून से तो निकालते और फूँकते,
सीटी की आवाज़ तो उसे मचला ही देती।

हम लौट आते हैं अपनी बूढ़ी ख़ामोशियों के घर
चुँधियाती खिड़कियों पर पर्दे चढ़ा देते हैं।
दिन पता ही नहीं चलता किधर से आया गया
पर्दे नहीं थे खिड़की पर?
दोपहर क्यों नहीं आई?
शाम घिर आई,
खिड़कियों पर पर्दे सरका दें?
पर्दे सरका देने से रात बाहर रहती है?

वाटसैप नशा

वाटसैप खैनी से अच्छा है?
आँखों से रस जाता है?
ओंठ में दबे-दबे, रस जाता है
तो दाँतों का कैंसर होता है
आँखों का होगा, पढ़ोगे जल्दिये[1]
शोध हो गया है
टाईप हो रहा है।
अब इंडिया का डॉक्टर बुलायेंगे
वही लोग लौटकर फैलायेंगे यह रोग
कोई सम्मानजनक रोग होता है
रोगों में आलादर्ज़े का, माने
रोगों का राजा, कैंसर माने
मोटी कमाई,
तब जाके कामयाब होती है पढ़ाई।

---

1. जल्दिये (देसवाली) = जल्दी ही

विश्व जल-दिवस

होली के अगले दिन जल-दिवस!
यही कल होता तो काम आता.
कल रंगों की वकालत की,
विश्व रंग-दिवस मनाये
तो आतंकवाद दूर हो जाए?
जो कल लगे रंग
दुनिया आज कैसे छुड़ाये
बिना जल के?

जल तो आये दिन होना, रंग तो सालाना
विश्व जल दिवस तो पक्का उसी दिन होना
होली चाँद पर डिपेंड होना!
तो काहे का रोना?

बुरेहाल पत्ते-किताबें-कलमें-जूते

बुरा हाल है पत्तों का
दोनों बगल सड़क के ठुड्डे[1] खाते
चूर होते चुरमुराते
सूखते भुरभुराते, हालाँकि कितनी ऊर्जा समेटे
कोई तीली मार देखे
किस तरह लंकाधिपति जलाते।

बुरे हाल किताबों के
ढेरों पे ढेर चढ़े जाते, स्टॉल लगते मुरझाते
सरसरी निगाहों दर्शक निकल जाते
बेचनेवाले ड्रामा खेलने चले जाते!
हालाँकि कितनी ऊर्जा बटोरे
कोई गौर फरमाए तिल-भर
तख़्त-ओ-ताज ढह जाते।

बुरों हाल कलमें रुलतीं[2]
खत्म होते न होते बिगाते
जहाँ देखो ढक्कन सर-धड़ नज़र आते
कई इसी तरह छूटे
नित नये आकारों रिफिलों
लंबे-छोटे रूपों में तिलमिलाते
हालाँकि कितनी ऊर्जा समोये

कोई चला देखे
हजारों तलवारों के दम निकल जाते।

बुरे हाल हैं जूतों के
बाज़ार अँटे, डॉट-काम छँटे,मॉल पटे
घरों-चौबारों छितराये
एक-एक पाँव पाँच-पाँच जोड़ी वहान[3] उपाहन[4]
हालाँकि कितनी ऊर्जा तलवाये
कोई चला देखे
बड़ा फन्ने खाँ हैंकड़बाज रास्ते आ जाये।

---

1. ठुड्डे (पंजाबी शब्द) = ठोकरें **2.** रुलतीं (पंजाबी शब्द)= भटकतीं **3.** वहान (मराठी शब्द) जूता **4.** उपाहन = जूता।

धूप ते[1] हवा में पढ़ती गोरी

धूप में पढ़ने बैठ गई
धूप तुमको पढ़ने बैठ गई
यह क्या खेल खेल रहीं पढ़ने-पढ़ाने का?
अच्छा था चहलकदमी करतीं,
चलते-फिरते पढ़तीं
तो हवा चलती साथ-साथ, कुछ पढ़ न पाती
तुम्हें सुनती और सुनती
तुम चुप रहतीं तो चुप सुनती।

तुम लौट आतीं,
और वे दोनों--- धूप ते हवा
जिद-ब-जिद्दी इक दूजे को कसूरवार ठहरातीं।

धूप ने तो फिर कुछ पढ़ा था तुम्हें
हवा तो सिर्फ सुन पाई थी।
तकरार दोनों का कौन सुलझाए?
शायद कल तुम फिर आओ
तो यहाँ कुछ खेल जम जाए।

1. ते (पंजाबी शब्द) = अते = और /तथा

सेल्फी के पहले

चिकन ऑडर करने के पहले उन्होंने सेल्फी ली
दो कोणों से
फिर मीनू कार्ड देखा---सलाद सत्तर रुपए
एक बोला--- साला खीरा 5 रुपये, प्याज 10 रुपये
फिर कड़ाही, शाही पनीर पर बातें हुईं
उनके पास एक खाली बोतल भी थी।
पाँचों पहलवान थे पांडव
और साथ बैठा सुकड़ा, सिकुड़ा
देशी थी जो उन्होंने खोली थी
और पानी ही था जो मिलाया था
बीयर-अद्धों के साथ
पर इनके ख़्वाब बहुत ऊपर उड़े थे
सेल्फी के पहले।

खिलौना

हर आदमी अपने खिलौने में मस्त है
बेकाम व्यस्त है
जबकि खुद वही मिट्टी का खिलौना है।
उसका खिलौना चार्ज होता ए या डी बिजली से
मिट्टी-खिलौना चार्ज 5 तरह की बिजली से---
काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार।
एक बार प्लग घुसड़ गया बुद्धि में
पाँचों से एक बिजली का
फिर देखो कौन-कौन-सी फिल्में दिखाता सजीव
पर्दे पर नहीं।
दुनिया के रंगमंच का अभिनेता
मिट्टी का खिलौना।

और भी एक स्लॉट दिया है उसमें विवेक का ऊपरवाले ने
गर जोड़ दे वाहेगुरू-सतनाम से,
नाम की बिजली से तो
मिट्टी का खिलौना मस्त हो
जीये सौ साल बिना दुख-तकलीफ
बड़ी शान से।

वक्त की गिनती

गिना जाते हैं सात वार
उँगलियों के मुँहों पर,
गिना जाते हैं तीस दिन
चप्पे की पोरों पर,
गिना जाते हैं सौ साल
चेहरे की झुर्रियों पर,
नहीं गिनाते घंटे, मिनट, सेकेंड!

घड़ी की सूईयाँ थक जातीं
हिसाब हिलाते
बैटरियाँ फीकी पड़ जातीं
धड़कनों से कदम मिलाते
बर्फबारी में कहीं दबे रहते;
कभी उतर जाते चाँद के बेछुए कोनों पर
घंटे, मिनट और सेकेंड!

क्या कह सकते हो इनकी लकीरों को
भर हथेलियों इन्हें छपा पाकर।

किन्हीं गुफाओं की दीवारों छापकर
कैसे गिनने की सोचते हो
घंटे, मिनट और सेकेंड?
लुकचोरिया[1] का खेल नहीं है यह।

---

1. लुकचोरिया (देसवाली) = देहाती बच्चों का खेल जिसमें लकीरें छुपाई जाती हैं। दूसरा दल खोज कर उन्हें काटता है। जिस दल की बिना कटी लकीरें अधिक गिनाती है, वही जीतता है।

लो जारी हो गया फरमान

लो जारी हो गया फरमान ऊपर से भी
जाड़े की मौत का!
मुहर लग गई हल्की बारिश की!
बधाई! पोंगल, बीहू, लोहड़ी, उत्तरायण!
नई बोरियाँ मूँगफली-भर
सड़क किनारे फुटपाथ पर
शुरू भुनाई सुबह-सुबह से
छिलके छितराये जगह-जगह क्यों?
डालो भट्ठी ईंधन का काम लो!

साँड़ आ गया कूड़े पर
कचरा पन्नी प्लास्टिक क्यों खाये?
दूध नहीं देता तो क्या
कैसा बीजेगा अगली पीढ़ी में?
उतरन भुट्टा, मटर के छिलके साफ दो।

दरवाजों पर जूते

जूतों के ढेर हैं दरवाजे बाहर
घर कितनी टाँगों का बना है?
कितनी पर चलता है?
एक-एक पाँव कितने पगरखे बदलता है?

उम्र से पहले घिस जाते हैं कुछ चप्पल-जूते
कुछ छोटे हो जाते नाउम्मीद
कोई देख-देख पाँव बदलता है
पर्व-त्योहारों बल्लियों उछलता है
कोई मायूस लिबासों के रंग जलता है
नये पतलून-पजामे कमीजें
घर आलमारियों सजाता
छितराये वहानों[1] का दिल दहलता है!
न जाने कब पाँव खारिज कर दें
नयों की चाहत में पैंतरे बदलता है।

---

1. वहानों (मराठी शब्द) = जूतों

इतिहास हार-जीत का

उनके बारे ज़्यादा नहीं जानता,
जिन्हें हराया नहीं जा सकता!
जो हारे नहीं, किसी और मिट्टी के थे?
जो जीते, अपनी ही गढ़ी मिट्टी के थे?

उनके बारे ज़्यादा जानता है इतिहास
हराने में लगे रहते, मुक[1] गये!
खुद कभी जीत नहीं पाये!

इतिहास गवाह बना रहा उनका
जो मिटाने में लगे रहे उन्हें,
हराये नहीं जा सके जो
जो हारे नहीं अथक
इतिहास ने सिर आँखों बिठाया!

उनके बारे ज़्यादा नहीं जानता
जीत नहीं सके तो क्या, भरोसा रखा।
गर्व करता रहा इतिहास अपने पर
कि उसके चलते ऐसी मिट्टियाँ तैयार होती रहीं
जो हार-जीत के रंगों को चढ़ने नहीं देतीं खुद पर
बल्कि इतिहास गढ़ देती है ऐसी मिट्टी
जिसका रंग कभी न उतरे।

---

1. मुक गये (पंजाबी शब्द) = खत्म हो गये।

रूम नंबर-1, राजपूताना[1] छात्रावास की आलमारी

तुम शायद ही निकल पाओ छिपकली!
बंद हो जिस किताबों-अँटी अलमारी की घुटन में
वहाँ मिल भी गये शिकार, तो किताबी होंगे!
नहीं बन पायेंगे आहार
कलेवा एक डंग[2] भी।
किस पर करोगी वार?
न यहाँ कोई खबरदार, न तैयार।
बस सूखी गंध जानकारियों की
ऐतिहासिक-भौगौलिक...
वैज्ञानिकी, प्रशासनी और सामान्य ज्ञान की।
यहाँ बोझिल ग्रंथों तले इम्तहानों की बारीक चालाकियाँ
यहाँ पलड़ों के पीछे कराहतीं
खुशफहमियाँ... लाचारियाँ
घुट जायेगी साँस तुम्हारी छिपकली!
और कितने दिन चल सकतीं धड़कनें भूखीं?

जसबीर आया है
उसने मुआयना कर सरसरी
आँखों से उलट-पुलट
तुम्हें भी देखा है एक कोने दुबकी।
वह तुम पर रहम करेगा जरूर

खुले रखेगा कपाट बड़ी देर
तुम निकल भागो, हो जाओ आज़ाद ताकि।
रेंगो चार दीवारों की हवादार दुनिया में
पर सोच लो!
तुम्हें पहले एक बयान देना होगा---
यह ज्ञान की तिलस्मी दुनिया झूठी!
बेचने-खाने-कमाने के सिवा
इसमें सच्चाई कोई नहीं।

सारी जगहें पाट दो इनसे पृथ्वी और अंतरिक्ष की।
ढाई आखर प्रेम का उपजे
तो मुझे बचा लेना खुशकिस्मती!

---

1. राजपूताना छात्रावास = आई.आई.टी (बी.एच.यू) का एक हॉस्टल **2.** डंग (पंजाबी शब्द) = जून

डाई

कोई डाई दाढ़ी काली कर देगी हमेशा के लिये
इस खामख्याली में मत रहना!

हाँ, आँखें इतनी बूढ़ी कर देगी कि
हरा ही दिखे हमेशा, सावन के अंधे जैसा।

यह विश्वास कर लेना चाहिए कि अस्सी की उम्र में
चिर-युवा बुद्ध के भी सफेद हो गये थे बाल
प्रकृति की कोई बूटी वक़्त के रंग नहीं बदल पाई।

बहुत बार कहा था राम रसायन, नाम रसायन
पर सब कर गये पलायन
प्रेत-प्रेत कर तिरिया भागी
लिपट गया बिछावन सदा के लिये।

नहीं बची जब काया ही,
तो दाढ़ी-केश की क्या बिसात

और फिर उनके रंग... फूह!
कितना-कितना फर्जी है सब खलेरा[1]।

---

1. खलेरा (पंजाबी) = विस्तार, बिखराव

सर्जीकल ऑप्रेशन

चीजों को उनकी जगह रख दो,
यही अपेक्षा है उनकी
चाय में चीनी डाली कि नहीं, बेशक भूल जाओ
पर पत्ती को वापस वहीं टिकाओ
बहुत- से आशीर्वाद इसीलिये मिलते हैं
कि उन्हें बेघर नहीं किया गया
चाहे जितने स्मार्ट हुए शहर
उन्हें लापता नहीं किया गया।

वापस, बल्कि करीने से,
उनके छत और फर्श साथ रहे
बहुत कीमती होते हैं टिकाणे[1] ... ज़िंदगी से भी ज्यादा
पंछियों को आलणे[2] पंखों से ज़्यादा प्रिय होते हैं
उड़ानों की हिम्मत होते हैं वे
दरख़्तों की हरियाली होते हैं वे।

चीजों को वापिस उनकी जगह रखना
अनुशासन नहीं, तैयारी है
सर्जीकल ऑप्रेशन।

---

1. टिकाणे (पंजाबी) = ठिकाने **2.** आलणे (पंजाबी) = घोंसले

दबे-गीले-सूखे

गीले-सूखे पत्ते हैं
कुचल कर चले भी जाओगे
वैसी आवाज़ भी नहीं करेंगे
सूखे होते तो जैसी।
चुप भी नहीं रहेंगे
भीगी घुटी आह होगी
पर बद्दुआ हर्गिज़ नहीं।

उन्हें पता है नंगे पाँवों का
जूतों के बारे उनके विचार बहुत अच्छे नहीं।
पर यहाँ विद्यार्थी लोग हैं
और जहाँ वे चुए हैं
कंटीनें हैं विश्वविद्यालय पी.यू.[1] की।
× × ×

पत्तों की बारिश हो रही है
ऐसे झड़ रहे हैं, नकली हों जैसे
नीचे ढेर लगे हैं, और कुछ दरख़्तों पर
जैसे हरी सबेर हो गई है
बिल्कुल ताज़े, कूले-कूले
गुदगुदी नर्म हरीतिमा।

---

1. पी.यू = यूनिवर्सिटी

करण

सौंदर्यीकरण होगा, मतलब चौड़ीकरण होगा
कच्ची मिट्टी नहीं रहने देंगे
सीमेंटीकरण होगा।
हरियाली नहीं रहने देंगे
हरीकरण होगा
नहीं तो हरित्करण होगा।

नयी बहुत सारी योजनाओं का शिलान्यास
पुरानियों का पर्दाफाश
फाईलों-अफसरों का नवीनीकरण होगा
ठेकों पर चढ़ेंगे अवसर
कलाओं का रोज़गारीकरण होगा।

देसवाली[1] में ईश्वर

सत्य तो होता ही है
अब उसमें का[2] कोई झूठ बोलेगा
आ[3] जो सत्य होता है, वही ईश्वर होता है
ऊहे[4] सुंदर होता है कि नहीं, पता नहीं
बहुत लोग उसको भयंकर कहते हैं
बाकी[5], कल्याण करता है
देर-सबेर जब करे
दवाई के घूँट-सा हलक से गिराते रहो
फैदा[6] करेगा... शिव है
काहे कि सच है
सच कड़वा होता है
बा कि झूठ से बढ़िया होता है
अब उसमें का कोई झूठ बोलेगा
मालूम है, जो सो कि उसमें शर्माये जैसा कोई बात नैहै[7]
सच को चदरा ओढ़ा दो
आ चाहे लंगटे[8] छोड़ दो
सुरुए[9] से ऐसने[10] था
जखने[11] कोए नईओ[12] राहा
तहिओ[13] नीमन[14] रहा
नीमन माने जे चिन्हा[15] जाये
सुंदर होबे चाहे नईं, बुझा जाये[16]
बूझलो साँच तो लौकेगा संकर[17]

झुठाओगे सच तपायेगा भोले
सच सब कर[18] अगाड़ी[19] रहा
अखनैं[20] है,
ओकर पीछे सब देवी-देवता लाइन दीहल[21] रहा।

---

1. देसवाली = देहाती **2.** का = क्या **3.** आ = और **4.** ऊहे = वही **5.** बाकी = लेकिन **6.** फैदा = फायदा **7.** नैहै = नहीं है **8.** लंगटे = नंगे **9.** सुरुए से = शुरू से ही **10.** ऐसने = ऐसा ही **11.** जखने = जब **12.** नई ओ = नहीं भी **13.** तहि ओ = तब भी **14.** नीमन = अच्छा **15.** चिन्हा = पहचाना **16.** बुझा जाए = समझ में आ जाये **17.** भोले, संकर = शंकर **18.** सब कर = सबसे **19.** अगाड़ी = आगे **20.** अखनैं = अब **21.** दीहल = दिया।

लंबी यात्रा शुरू होने वाली है

लंबी यात्रा शुरू होने वाली है
याददाश्त छोटी कर लो
स्मृति-फलक क्रॉप कर दो
बाकी सब धुँधला
बस इतना शार्प फोकस
ट्रेन का नाम, नंबर और रेलवे समय
नहीं तो उड़नजहाज और समय
पीएनार, प्लेटफॉर्म नंबर या द्वार
सब स्वत: पर्दे पर।

पहले अप्रैल से आरंभ
फिर एक दिन यह भी याद नहीं रहेगा
जिस कोठरी में ठहरे हो उसका
दरवाज़ा खुला है कि बंद
फिर एक दिन पाओगे
जो नहीं हुआ करता था तुम्हारा
नहीं है वहाँ
फिर एक दिन तुम समझोगे
बिना याद रखे क्या है तुम्हारा
दरवाजा खुला या बंद रखा जा सकता है
बिना याद रखे।

खोल वह रहे हैं जो बंद नहीं है

खोल वह रहे हैं जो बंद नहीं नहीं है
बंद वह कर रहे हो जो खुला नहीं है
बारिश में सूखने को डाल रहे हो कपड़े
धूप से कोशिश कर रहे हो भिंगोने की
जो उगा ही नहीं उस पर हँसुआ फेरोगे?
जो जन्मा ही नहीं उसे पालने खेलाओगे?
घूँसे चला हवा का मुँह तोड़ना चाहते हो
छाया को पेड़ से खींच मोड़ना चाहते हो
पानी को प्यास से अलग, भूख को रोटी से
दीवार को सिर से फोड़ना चाहते हो।

एक जून खाता शायर

एक जून खाता शायर, हाँड़ी ही इकडंगी है
मुंडी खूब हिलाता है, ना समझे तो पंगी है

कुंडी से दरवाजा बंद, बीमारी तो तंगी है
फुनगी–फुनगी नंगी है, गो दुनिया बहुरंगी है

हंस अकेला जाता है, ना बेली ना संगी है
सालों एक ही धाम रहा, पक्की जाँ का जंगी है

झाड़ू से उकताया है, पुश्तों से जो भंगी है
तुझको देख बहलता दिल, तबीयत वैसी चंगी है।

जिसको धोते हैं वही साफ होती है

(क)
जिसको धोते हैं वही साफ होती है
दीवार हो या अक्ल, गंदी होती रहती है
ऐसा भी नहीं कि हर वक्त जरूरत हो
लगे रहने की
बुद्धि के पीछे-पीछे भगे रहने की
पर साबुन-लगे हाथों झाग हो
उससे मल तो सकते हो गंदी फर्श
तुम्हें खुद अच्छा लगेगा
चमकती सुथरी टाइलें और बुद्धि देखकर।

(ख)
कुछ गंदे हैं, कुछ भीगे हैं
साबुन-घोल में डूबे हैं
कुछ धोबी-पास गये हैं इस्त्री खातिर
धुले कुछ सूख रहे हैं,
बस यही आखिरी बचे हैं, जो तुम्हारे सामने हैं प्रभु!
चाहो तो स्वीकार करो, प्यार करो!

एक्स्ट्रा

तुम्हारे ही खून में से एक्स्ट्रा बनता है
10 प्रतिशत आ[1] कि 25 परसेंट
कोई अलग से थोड़े मेहनत करता है 15 फीसदी!

विज्ञापनों पर मत जाओ
गंजे को भी कंघी बेच देते हैं।
घर पर बैठो पाँच साल बेरोज़गार, देखने
कि खाते में कितना कहाँ से आया, तो चलेगा?

पकौड़े तलने का मतलब बेसन-तेल की जुगल-जुगाड़ नहीं
तलवों के छिलने से रिसता रक्त है
पैरों पर खड़ा रहने के लिये।
नहीं करते...मत करो!
जवानी और वक्त दोनों नहीं लौटते।
जबकि उनके घर बने हैं आलीशान।
दोनों एक ही बात पर यकीन करते हैं-
इश्तहारों में भी जो एक्स्ट्रा होता है
खून-पसीने का ही हिस्सा होता है।
नून-तेल का हिसाब करने के बाद ही
लिट्टी-चोखा वजन होता है।

---

1. आ (देसवाली) = अथवा

तुम लोगों के पास उम्र है

तुम लोगों के पास उम्र है
हमारे पास उम्र की दगाबाज़ी
तुम अभी आँधी को भगा सकते हो
हमें आना-पान चलाना है
मेले के तुम्हें बत्तीसों स्वाद लेने हैं
हमें मीठ सूट नहीं करता, तीतू से भी परहेज़ है
तुम्हारी नब्ज़ में घोड़े दौड़ सकते हैं
हमारे ढीले कब्ज़े कसने के बाहर चले गये हैं
तुम तरह-तरह की सुगन्धियों में मेल बैठा सकते हो
हमारी बुट्ट[1] नाक
भाप-गंध की डींगें हाँकती है।

---

1. बुट्ट (पंजाबी शब्द) = बंद

बहुतों के बहुत सारे पैगाम आये

बहुतों के बहुत सारे पैगाम आये
तुम्हारा आये तो आराम आये

एक उफ न की सीने ने रुककर
दुख-दर्द आये, ग़म तमाम आये

जो राहत तुमसे, तुम्हीं से होनी है
क्यूँ दुनिया-भर का सरंजाम आये

बातें झटके से रुक गईं थीं जो
चल पड़ेंगी जो वही नाम आये

गैर क्यूँ? हमारी तरफ वही देखे
कब नज़रों को रुख का ईनाम आये।

छाया को ऐसे खोजते हो

छाया को ऐसे खोजते हो जैसे अंधा माँ को
इसीलिये मुँह नहीं लगती सर्दियों भर
जाओ मिलती रहो अपनी दीदी को
अब क्या होता है
होली के पहले ही नानी मर गई!

क्या एक पेड़ के अलावा किसी के पास रौशनी है
जो आदमी की ब्रह्मचक्षु देखे
फूलों से और क्या उम्मीद रख सकते हो
क्या उसके रंगों से, और क्या तो खुशबूओं से!

दिन बड़े होते जा रहे हैं
कौन फुला रहा है?
दोनों कोने जगह बन रही है धूप भरी
उसमें नये गुलाबों की मुस्कान भी है।

शाम होती है तो पस्तमन हो जाती है
एक दिन और गया... रात बन गया।

धूप चम्मच बन चुकी है
एक जगह से तुम्हें उठाकर
दूसरी जगह रख देती है।

मन की कौन जानता है

मन की कौन जानता है
कौन जान लेता है
अतिचंद्र-दर्शन की ख्वाहिश बूझ लेता है।
झलक दिखा रक्तिम प्रकाश की
मनोकामना पूरी कर देता है
गो, ग्रहण की पूरी लीला बादलों ढँक देता है।

एक सौ बावन वर्षों को निमिष में सर[1] कर लेता है
अगले दिन अख़बार ब्लू मून का चित्र छापता है

अदरक मुलायम हो, कूटा जाता है।

---

1. सर (पंजाबी) = तय कर लेता है।

दरवाज़ा बंद तो बीमारी बंद

दरवाज़ा बंद तो बीमारी बंद
नहीं तो ड्रग-रेजिस्टेंट टी.बी
विलन को पिटते हुए बीच में छोड़ दिया।

खतम हो जाता तो
दिक्कतें खड़ी नहीं करता, हीरो के लिये
क्योंकि समय इस ढंग का है
ईनामी योजनाओं-सा छल सकता है।

कपड़े बारिश हजम कर लेंगे

(क)

वह जगहें जो अभी तक दूध से धुली हैं
हमारे निशानों की एवज, भीग जायेंगी
थोड़ा-थोड़ा भीगते पूरा भीग जाऊँगा
जैसे भीग रहे ये टेबुल और कुर्सियाँ
और भीगने से बचते ये जोड़े।
भीगकर सूख जायेंगे, सूखे भीग जायेंगे
तार पर लटके जैसे भीगते-सूखते
कपड़े बारिश हजम कर लेंगे!

(ख)

कहाँ से आती है यह बारिश
इसकी बूँदें कहाँ से आती हैं?
अब तक तो सबने पढ़ लिया है इनका राज़
सबको पता लग चुका है
इनके पैदा होने-फ़ना होने का क्रमिक इतिहास।
सबको ख़बर पड़ चुकी है इनके उड़ने-बरसने की
दरख़्तों में भी नहीं छुपीं इनकी हसरते-दास्तान,
दरियाओं ने भी बयां कर दीं इनकी कहानियाँ
नालों-तालाबों में पूछ लो इनकी कागज़ी कश्तियाँ
झरनों-झीलों से तपाश कर लो मेहरबानियाँ!

1. तपाश (गुजराती)= खोज

न तो नासा से कह सकता

न तो नासा से कह सकता---
''ना करो ऐसी भविष्यवाणियाँ!''
न दिल्लीवालों से कह सकता---
न भगो ऐसी अफवाहों से!''
न वाटसप वालों से कह सकता---
''न करो वायरल ऐसे ऊल-जलूल!''
न भूकंप से ही कह सकता---
''न करो ऐसी बेरहम बर्बादी!''

फेर क्या कर साकू[1] हूँ
पाद मार उड़ा दूँ सारे ग़म?

---

1. साकू (हरियाणवी में) = सकता

वक़्त को देखा है

वक़्त को जोंक की तरह चिपकते,
खिसकोली-सा कभी खिसकते भी देखा है
कछुए की तरह सुस्त चाल कभी, खरहे-सा उछलते भी देखा है

केंचुए की तरह रेंगते कभी, घोंघे-सा सरकते भी देखा है
घोड़े की तरह दुलाँघता-फलाँगता कभी,
तितली-सा फड़कते भी देखा है

बर्फ की तरह पिघलते कभी, बूँद-सा टपकते भी देखा है
शहद की तरह फिसलते कभी, दूध-सा उफनते भी देखा है

बंदर की तरह छलाँगते कभी, कमल-सा उपलाते भी देखा है
हिरण की तरह कुलाँचते कभी, साबुन-सा झगाते भी देखा है

नाग की तरह फणाते कभी, तेलचट्टे-सा तड़फते भी देखा है
वक़्त को युद्ध की तरह ठनते कभी, विराम-सा थमते भी देखा है

चुप्पी की तरह पसरता कभी, शांति-सा फहराता भी देखा है
पौ की तरह फटता कभी, उजाले-सा लहराता भी देखा है।

फसलें पक रही हैं

फसलें पक रही हैं, यह उनकी मजबूरी है
धूप खौफनाक हुई जा रही है, बैसाख की मजबूरी है
दुनिया की धूल उड़ रही है
पहाड़तोड़ू मशीनों की मजबूरी है
तूड़ी सड़ रही है, किसानों की मजबूरी है
धुआँ दमघोंटू है, गलों की मजबूरी है
तुम न ज्यादा गर्मी सह सकते हो, न सर्दी
न बारिश में भीगना चाहते हो, न पसीनाना!

छाती गड़ने लगती है, नाक बहने लगती है
आँखें जलने लगती हैं, कान उखड़ने लगते हैं
माटी के पुतरे को सब कुछ चाहिये सोने में
घर बैठे आनंद हर विंदु का, हर कोण से
धूप[1] रा रिमोट अपने हाथ चाहते हो
हवा का रेगुलेटर तो लगा ही है!

न तुमको फसलों का पकना अच्छा लगता है, न मौसम का
सब सिर्फ स्क्रीन पर चाहते हो, ऊँगली छुआते
सड़कों पर उड़ना चाहते हो बिना मुड़े
आकाश में सड़कें बनाना चाहते हो चौराहेदार
पत्थर तैरने लगें पानी पर कदम पड़ते
उड़नझूले तुम्हें लेकर पार उतर जायें पलक झपकते।

1. धूप रा (राजस्थानी) = धूप का

यह एक ऐसी धूप है

यह एक ऐसी धूप है जो बिल्कुल सीधी नहीं है
पहले शहतूत के पत्तों पर पड़ रही है
फिर मेरे तक आती है
यह एक शहतूती धूप है, पता नहीं
उसे अच्छी लगती है यह कि नहीं
नहीं पता, क्यों धूप पहले उसके पास जाती है
जबकि पहले मैं हूँ राह में
सीधी मुझ तक क्यूँ नहीं आना चाहती?
पेड़ मुझसे कुछ नहीं कहता
ढँकने की कोशिश करता है कि धूप मुझसे मिले ही नहीं
पहुँचे ही न मुझ तक
मदद करना चाहता है धूप की
मुझसे बचा लेना चाहता है उसे?
पर क्या करूँगा मैं धूप को
क्या खतरा है उसे मुझसे
क्या कर लूँगा उसका?
यह धूप से भी नहीं पूछना चाहता
यह जरूरी सवाल नहीं है
इससे भी ज्यादा हैं जरूरी कुछ सवाल
पूछने के लिये धूप से
क्या जानती है वह शहतूत के बारे
उसकी बहुत-सी हरी पत्तियों-से चंगुल में फँसती जाती है

क्या जानती है उसके पुरखों के बारे
सबसे अहम है यह सवाल कि धूप,
किसी के बारे कोई राय तुम कब कायम करती हो
जब अँधेरा हो या जब उजाला हो।
× × ×

कुछ बूढ़े धूप को भी बूढ़ा कर देंगे
उनके हाथ सोटी[1] है
जबकि सर्दियों में भी धूप खड़ी नहीं रहती
झुककर या छड़ी टेक नहीं चलती
धूप की निशानी है, कभी थथलाती नहीं
लॉज का कमरा ही प्रतीक्षालय बना लेती है
कलाई घड़ी को देवालय बना लेती है।

1. सोटी (पंजाबी) = लाठी

जा चुके ससामान

जा चुके ससामान
कमरे मुँह बाये खाली पड़े
जहाज उड़ जायेगा जरूरी जितना, ले
पहँच जायेंगे घर साकेत
लंबे-पतले दरख़्त सुपारी के
ऊँचे असमिया केलों के
लार नहीं देंगे सूखने
पहुँच जायेगी हरियाली-संग।

कुछ भी नहीं जायेगा
छूट जायेगा सारा असबाब
मुँह बाये खाली पचटी रहेगी देह
हंस उड़ जायेगा।

जरूरी क्या जो लें
मोटे लंबे-पतले दरख़्तों की हरियाली
उड़ पायेगी संग?
सारस हंस क्या उठाये संग?

कवितायें अकाल की, सकाल-बिकाल की
अंगोछे-भिंगोई मूड़ी, सत्तू-चबेना-पीठा
कहाँ हॉल्ट होगा लंबा, किसे लगेगी भूख
किसे रहेगी भूख कविताओं की?

अमरीकन अम्बैसी

बाहर जो दाँत होते हैं, घुसाने के होते हैं
अंदर जो दाँत होते हैं, रगड़ने-चबाने के होते हैं
कचूमर निकालकर सारा रस चुआने के लिये।

अंदर-बाहर के दरों पर बहस नहीं करनी सीखो
अलहदा हैं भीतरी कायदे
सौ नंबर पर पुलिस है
कभी समझा नहीं पाओगे
जो जगा हुआ है, उसे क्या जगाओगे?

कोयल बोलती है, अजगर नहीं बोलता
उतारिये और चलिये, रुकिये मत
अंबैसी के बाहर तो बिल्कुल नहीं
कैमरे हैं, आतंक है और व्यवस्था है
सब कुछ अंतरिक्ष-जाल पर है
सारी जानकारी दर्ज है, जो दी गई है।

मोसूल

तुम लोग वहाँ गये थे, वहाँ रोजी पाने अपना वतन छोड़कर
नानक जहाँ गये थे रिज़क बाँटने खुदाई का
किरत करनी हो तो अपने मुल्क में ही,
यह तो नहीं बाबा ने बोला
पर बापू तो बोल रहा था।

पंजाब में धरने डालते कि काम दो
मरने तो वहाँ भी गये, यहीं कुछ अनशन करते
रोज़गार तुम्हारा हक था भाई
तुम चल दिये, नकली थे क्या?
जमीन बेच एजेंट खिला, पराई धरती
कि वहाँ पहले गुरू का गुरूद्वारा है
लंगर तो मिल ही जायेगा मुफ्त
अरे भोले सिख मजूरो! अपने यहाँ कमी थी लंगर की?
डंगर भी काम करते हैं बस खाकर
तुम माँगते हो अपनी विशिष्ट पहचान को सलाम
जो तुमसे जान की कीमत वसूलता है।

शहतूत का पेड़

अतिवादी है।
देखा था उसे फुनगी-फुनगी नंगा
असंख्य छोटी-छोटी पतली टहनियों वाला अलफनंगा।
अगले दिन पूरा दरख्त कच्चे हरे पत्तों से लबालब भरा
चिची[1] उँगली तक नहीं खाली
एक मुजस्समा हरियाली
रातों-रात चमत्कार... कैटास्ट्रॉफिक
मार्टेन्सिटिक[2] ट्रांसफॉर्मेशन-सा!

ज्यादा दिन नहीं बीते... पहली अप्रील से भी तीन दिन पहले
असंख्य फल
कोई बैठे छाया-तल तो लाल हो निकले।
नीचे धरती इतनी लाल जैसे चप्पड़चिड़ी
कैटास्ट्रॉफिक
रातो-रात इतने फल, मार्टेंसिटिक ट्रंस्फौरमेशन!
अतिवादी शहतूत।

---

1. चीची (पंजाबी) = छोटी अंगुलि **2.** मार्टेन्सिटिक = धातु विज्ञान में प्रयुक्त शब्द। इस्पात की अंदरूनी सूक्ष्म बनावट में होने वाला एक खास बदलाव।

अब चाय इतनी बच चुकी है

अब चाय इतनी बच चुकी है
और इतनी ठंडाई भी कि बिस्कुट बचे रहें
न डुबाये जायें।
दर्द करे दाँत उनमें कुछ कण छुपे रहें
मौत के बाद भी तूतनखामन जैसे निष्कर्ष
हथेली पर धर दें एलीयन की---
जसबीर पीता नहीं था
बस, उसे चाय खाने की आदत थी
यकीनन वह बंगाली नहीं था
पर मछली उसे प्रिय थी
उखाड़ने-साटने का खेल खेलते।

शहतूत झकझोरवा है

(क)

शहतूत झकझोरवा है!
एकबारगी आँखों, दिलो-दिमाग, होशोहवास, पूरी चेतना
देह के डिब्बे में आलोड़ित कर दी
रातो-रात जिस तरह पत्तों से भर उठा आपादमस्तक
और अब जिस तरह लदा है लकदक लाल-काले फलों से
अहर्निश टपकाते।

(ख)

जाते हुए शहतूतो, जमीन से चुन लूँ तुम्हें?
छोटे-छोटे लाल कीड़ों-से
अब लंबे काले फल नहीं रहे।
कुछ दिनों बाद लू में आहें भरोगे
याद करते अपनी गदराई देह
और सब्ज़-बाग देखते घने पत्ते
हरी छाया को अवसाद बना धुनेंगे।

आदमी उधर से चलता है जिधर से छाँव हो
बाँये-दाँये के नियम मालूम नहीं री छाँव?
घने पत्तों वाली डालियों के घेरे
चाहें सिर, ढूँढ़ते पाँव
कहाँ जाऊँ उधर खूब हैं भाड़
एक सिरे से गायब झाड़।

---

1. झकझोरवा (देसवाली) = झकझोरने वाला

अब कोई क्या करे

अब कोई क्या करे
गिरते ही जाते हो... गिरते ही जाते हो
अक्षय हो शहतूत?
कितने कुचले गये जूतों-तल
कितने तोड़े गये... बाप रे!
कोई कितने कदम बचाये
चुन-चुन कर खाये, अघाये
धन्य शहतूत तुम्हारे फल!

कीड़े-मकौड़ों-से काले-काले
मीठे गज़ब के
पूरा खून ही खून... जितनी धरती पर तेरी छाया।

लानत है इन कदंबों पर
गोल-गोल रसगुल्लों-से
पकते भी तो ठोकरों खातिर
चुनता कोई नहीं... बस, धुन देता।

जगह-जगह है

जगह-जगह है
चौड़े दरख़्तों से निकलती हैं चौड़ी सड़कें
देखा, गडकरी ने देख लिया
तुम्हारे दो पल की लापरवाही को!
कहाँ रखते हो ध्यान बटन टीपते
नुकसान देश को उठाना पड़ता है।

सारे मंसूबों पर पानी फिर जाता है
सपने चिन दिये जाते हैं सड़कों में,
प्लास्टिक खपाने की तकनीक हुई विकसित
चाहे नहीं
सपनों की हुई है!
सवारी ही टिकट की जुम्मेवार
सवारी ही सामान की, बीमारी की, हवा पानी की
गाड़ी रोक कर तुम्हारी ज़िम्मेवारी की तलाशी ली जाती है
तुम जुर्माने के हकदार हो।

ओसीली घास पर चलने वालो

ओसीली घास पर चलने वालो
नेत्रों की जोत बढ़ जायेगी
क्या देखना चाहते हो नंगी आँखों
बोनस बीनाई
द्रोपदी कन्या की आठ महारथियों-बलात्कृत चीथड़े देह?
बेहतर था धृतराष्ट्र होना चीरहरण के पहले।

कैसी गैर जिम्मेदाराना सैर है
सूरज जहाँ डूबे समंदर नहीं होता
यहाँ पेड़ों के झुरमुट हैं, मैदान के पीछे
लहरें आगे उछल रही हैं
और फेन की मानिंद उछलती हैं अलकें
कैसे गैर जिम्मेदार हैं पग
किनारे तश्मे टकराते-उतराते
और जूते गहराई में डूबे पछताते।

इस वेले

जिस व्यक्ति तक पहुँचने का प्रयास कर रहा था
असमर्थ था... 'दूजी कॉल ते रुझया होया ए'
होल्ड करता रहा, संपर्क करवा माटे[1]
कोशिश बना रहा... फिर
एनादर कॉल पर बिज़ी हो गया
कई जुबानों में यही समझाया गया मुझे
कि व्यर्थ है, वह नहीं उठायेगा
तुम्हारी कोई बात संसद में!
न उठाने का जब इतना मिलता है...
कोई बाद विच[2] नहीं उतरा गाड़ी से
इस वेले नहीं ताँ किसी वेले[3] नहीं।

संसद के कुएँ कूद हाथापाई करना सही नहीं है
दरवाजा बंद कर बीमारियाँ फैलाना सही नहीं है
जले के ज़ख्म हैं
इन पर इस तरह नमक छिड़क रहे जैसे जामुन हों।

---

1. माटे (गुजराती) = लिये **2.** विच (पंजाबी) = में **3.** वेले (पंजाबी) = वक़्त

क्या इनका अस्तित्व इसलिये बना था

क्या इनका अस्तित्व इसलिये बना था
कि वज़ूद मिट जायें
एक बार पेड़ से क्या टूटे कि बस
रोड़ा-पत्थर बन जायें
उठा लो इन्हें कवि।
रचना इसलिये नहीं होती कि मिट्टी में मिल जाये।
कोई कसूर नहीं इनका जो तेज़ चली आँधी
दरख्त उखड़े, डालियाँ टूटीं
पत्ते बेशुमार उड़े धूलों
झड़े आम कच्चे, अंबियाँ भी।

अंबियों के साथ होता आया है हर साल
हवायें तेज़ झकझोरती हैं
उड़ा पटकती हैं जमीन पर टहनियों से
अभी देखा ही क्या था ज़माना
न रूप, न रस, न गंध, न स्वाद
जिस्म भी कच्चा बेगुद्दा
न कड़वा न ढंग का खट्टा
कैसा करती ये हवायें सौदा।

दो तस्वीरें : एक

बीच से देखो... गुरु नानक
बायें झुकाओं कमर, अब देखो... गुरु गोबिंद सिंह!

थोड़ा और झुकाओ... फिर नानक
इसी तरह दाँये कमर झुकाओ तीस डिग्री... गुरु गोबिंद!
लगभग पैंतालीस डिग्री पर... फिर नानक!!

मतलब यह एक ऐसी तस्वीर है
पहले और दसवें दोनों गुरुओं का अक्स पाते हो
बिल्कुल सामने से देखो, ऐन बीच में गुरु नानक हैं
अगल-बगल विस्तार है
दूसरे दृष्टिकोणों से दिखेंगे गोबिंद
पर ध्यान से देखो, चित्त स्थिर कर
एक में दूजे का प्रतिबिंब... एक ही सार है।

दो तस्वीरें : दो

इसी तरह एक और तस्वीर है
हरिमंदिर साहब और बाबा दीप सिंह की
बीच से देखो स्वर्ण-मंदिर,
और बायें-दायें किसी भी दृष्टिकोण से
शहीद का हथेली-धरा सिर, गर्दन से जुदा
पकड़ा दायें हाथ खण्डा।

बड़ी-बड़ी कुर्बानियों ने गढ़ा है
केसरिया खालसाई झण्डा!
अकाल-तख्त मतलब सर्वशक्तिमान का आसन
सियासत बाद में, पहले धर्म।

यानि सियासत अधीन है,
ऊपर है धर्म का डण्डा
सियासत की रोटियाँ सेंकने में धर्म न हो ठण्डा।

न आँधी पे बस है

न आँधी पे बस है, न पत्तों पर जोर
फना[1] का आलम बरपा हर ओर।
आँधियाँ और भी चलनी हैं अभी।

ऐसी बदली हवायें, चली आँधियाँ
चौकोर प्लास्टिक-पन्नियाँ
कोने खड़ीं गोलाईयाँ काट रहीं
बड़ी गुत्थियाँ फूल गईं टायरों-सी
सड़कों पर चक्कों-सी घूम रहीं।

कहीं से रौशनी की कोई किरण आये
अंधेरे में उजाले का जादू चल जाये।
हर शहर की यही कहानी है
न शुद्ध हवा है, न पानी है।
लकदक जगमग भीड़ और भाड़
एक सिरे से गायब झाड़।

---

1. फना = हिंद महासागर में उठा चक्रवाती तूफान (2019)

पंचकूला-प्रवेश

घुसते ही मस्जिद स्वागत करती है
यह काफिरों की बस्ती है?
पैटन टैंक भी सजे हैं आगे हर चौरस्ते
जीत के ले आये हैं
पाकिस्तान ज़िंदाबाद कहते, नहीं थकते।

गुर्दे-आँड़ नहीं निकालते
दिल जीत लेते परायों का
धोखे से दुश्मन का सिर भी नहीं काटते
दोस्त को दें दगा? सपने में भी नी!

सोचना ही मुश्किल।

पहाड़ों का दर्द समझेगा कौन

पहाड़ों का दर्द समझेगा कौन
सुबकते रहेंगे बरसों-बरस
बंद-बंद काटा गया है जिस तरह
वैसे तो सिक्खों को बी मुगलों ने काटा नईं!

कक्ख नहीं रहण दित्ता[1]
चाकी[2] बना के रख दित्तै
सड़क दे लालची गदर मचाया ऐ!
ठेके दे लालच पहाड़ाँ विच आया ऐ!

---

1. कक्ख नहीं रहण दित्ता (पंजाबी) = कुछ नहीं रहने दिया 2. चाकी (पंजाबी) = साबुन की बट्टी

दुकानदार ख्याल रखता है

दुकानदार ख्याल रखता है
ग्राहक कितने बजे आया है
क्या पहने है, किस पर आया है
गिरगिट रंग बदलता है,
वस्तुयें रंग बदलती हैं
रंग से कीमत जुड़ी है।

दुकान बंद होने के समय
अनजान खुद्दर मुसीबत में आया है।
पैसे से ज्यादा बहुत कुछ महत्वपूर्ण है
दुकनिया समझता है,
वह सबसे बाद तक काहेला[1] बैठा है
बाज़ार कब का बंद हो चुका।

मौत और ग्राहक कह कर नहीं आते!

---

1. काहेला (देसवाली) = किसलिए

कुछ नया तो हो नहीं रहा

कुछ नया तो हो नहीं रहा
पहले भी इसी जगह काँच के दरीचों से
देखे हैं गलियारे तक छींटाते ओले
उसी तरह कुत्ते का बदन छाँटना
हरे मैदान का सफेद हो जाना
हवाओं का बर्फीलापन
और दो झूमते दरख़्तों की पीठ-पीछे
सूर्य-किरणों की हँसी का काँपना।
कुछ नया तो हो नहीं रहा।

कुछ रंगों में बिखर जाना
प्रकाशित अँधेरे में अँधियाया प्रकाश जैसे
गुस्साई गोरी गालों में गड़ता हास जैसे
सेलेब्रेट करती मई
जैसे दुल्हन नवेली नई!

ले लो, अपने-अपने मोबाइल में तस्वीरें
हम लोग नहीं ले पाते थे
नहीं थी वैसी तकनीक कोई
वैसे कैमरे पर तो यकीन था;
फिर-फिर हर साल ही तो देखते यह सब
कुछ नया तो हो नहीं रहा।

तुम्हें क्या पता मिलेंगे देखने को कि नहीं
कैद कर लो ये अद्‌भुत लीलायें
जो खेलती है कुदरत,
उछल कर पार करते
पानी के हल्के-फुल्के जमाव
कीचड़ अब कहाँ रहा?
हर तरफ बिछी हैं टाइलें
कहीं उन पर उचकती लीला
घसीले कदम उछलती बूँदें
कुछ कतरे पथराये बर्फाये
कुछ नया तो हो नहीं रहा।

कितने सक्षम हैं दूर-संचारी उपग्रह
अनुमान लगाते मौसमों के इस तरह
बदलते कई बार ही तो देखा जीवन में।
पर पूरे भारत का एकमुश्त नहीं होता था इल्म
इन आँधियों-बारिशों का महफ़ूज जो अपने इलाके तक
देखते हर साल और भूल जाते
कुछ खास नहीं जैसे, चलता है इतना तो!
अख़बारों कभी देर से छपती भी थीं मौत की ख़बरें
तो जोड़ ही नहीं पाते थे सारे असर
कि कहीं कुदरत मौत का तांडव कर रही।
कर ही सकती है... कौन रोक सकता उसे
हाँ, बंद कर दें संस्थान, वाहन, आवाजाई
उस दरम्यान अघटन न घटे
न पड़े नुकसान, न बढ़े मुआवजा
मृतकों और घायल परिवारों को
न लगे होड़ सरकारी अनुदान डकारने की।
पर, यह नया तो कुछ हो नहीं रहा।

जहाँ कोई नहीं रहता

जहाँ कोई नहीं रहता, धूल रहती है।
हवा देखती है घर खाली
जसबीर फिर नहीं है।
पटक जाती गुस्से से मुट्ठी
निराश निकल जाती है दूसरी तरफ से।
फिर आती है, तो तरस खाती है...
बेचारा कवि, अकेला।
धूल बुहार कोने कर जाती है।
फिर आती है, हैरान होती है...
''अभी तक नहीं लौटा!
हाय, कहाँ-कहाँ भटक रहा है अकेली जान!!''
मुट्ठी खोल जाती है बिस्तर पर...
मैं आई थी जसबीर, मेरी निशानियाँ हैं
लौटो तो पहचान लेना
लगातार देती रही हूँ दस्तक।
चिट्ठी नहीं हवा हूँ।
बराबर झाँकती हूँ चढ़े पर्दों से
तुम नहीं होते?

मालूम है... मालूम है
सबसे पहले तुम रौशनी चाहते हो
पर्दे सरकाते बटन दबाते हो

तब मुझे पुकारते हो।
कोई वाँधा[1] नहीं, कोई डाह नहीं, तुम्हारी मर्जी
तुम्हारी हूँ... आती रहूँगी... खोजती रहूँगी।
धूल ही मेरी लिखावट है
गिन लो हाजरी बेशक, कब नहीं आई?

तो क्या तब भी आती रहोगी मेरी प्यारी!
सदा के लिये जब मैं जा चुकूँगा
तुम्हारी मुट्ठियों में?

---

1. वाँधा (गुजराती शब्द) = अड़चन

रोजहाट

मुर्गे ही हैं इस रोज़ाना-हाट के पहले फरियादी
क्योंकि वे उलटे लटके होते हैं
और इधर सुबह हो रही होती है।
बहुत कौए उन्हें घेरकर सारी सब्ज़ियों के नाम गिनाते हैं
जो यहाँ आनन-फानन में आ पहुँचेंगी।

एक बुलबुल थोड़ी दूर से
दाँई तरफ हटकर सजनेवाली मछलियों की
खूबसूरती बयाँ करती है।
रात्रि के अंतिम प्रहर जो आया था एक मलंग पक्षी
अजान-छाप, संसार की परिभाषा बता
हाट से तुलना करता, गाता रहा था
दुनिया फानी, आनी-जानी, पिरानी
विरानी... बिकानी जैसी तुकें भाँजता रहा था।

हाट जब उठा अंतत: रात तक
मछलियाँ घिस दी गईं थीं
उनकी आँखें ढेर लगीं,
सब्जियाँ बिक गईं, कुछ तलवों पिचकीं
मुर्गे कट गये
झूड़ी बचे
कल के सबसे पहले फरियादी होंगे
सुबह हो रही होगी।

छाया-रस्सी

पेड़ों की छाया रस्सी-सी तनती है
अंदर नहीं आ सकती धूप
जैसे सामने लाइब्रेरी के
रस्सी नहीं लाँघ सकती कार।

छाया जिस तरफ होती है,
पैर मुड़ जाते हैं
गर्मियाँ हैं
दिनों की धूप पेड़ों पर बदली-सी छा जाती है
तुम्हें छोड़ कहीं जाना नहीं चाहता
जैसा सुखदिया शहतूत ने
वैसा ही ओ तार फूलों वाले शज़र!
चूँकि कतारबद्ध हो
लाल गलीचा बिछा दोगे।

48

जो काम 48 सालों में नहीं हुआ
48 महीनों में कर दिखाया
जो 48 महीनों में नहीं हुआ
48 दिनों में कर दिखायेंगे
जो 48 दिनों में नहीं हुआ
48 घंटों में कर बतायेंगे
जो 48 घंटों में नहीं बता पाये
48 मिनटों में समझा देंगे
जो 48 मिनटों में नहीं समझा पाये
48 सेकेंड में करवायेंगे
जो 48 सेकेंड में नहीं पुरा
48 पल न रह पायेंगे,
तर्जनी-अंगूठे।

कालचक्र

समय जितनी फुर्ती से चलता है
तुम क्यों नहीं?
उसकी गर्दन देखी है
पेड़ों-नीचे चलते भी अकड़ी होती है!

एक पेड़ की छाँव कहाँ तक चलेगी
कितनी भी खिंचे कहाँ तक खिंचेगी!
कतार की कतार काट डाली।

हमारे यहाँ इतनी कंटीनें चलती हैं
विश्वविद्यालय है,
यहाँ कोई गोर्की पैदा नहीं होता
चाय का सेंक हड्डियों तक पहुँचा दो!

बड़ी उमर के मकानों की छतों
उग आते हैं बड़-पीपल
जैसे बड़ी उमर के कंधों-कानों बाल!

उम्र फिर से हिसाब करती है।

कलकत्ते की गर्मी

कलकत्ते की गर्मी पसीने से नहीं नापी जा सकती
कलकत्ते की उमस रूमालों से नहीं सोखी जा सकती
गर्मी ऐसी कि रूमाल चबा लेती है।
कलकत्ते के पास बहुत पुराने पुल हैं
बहुत पुरानी हुगली की हवा है
कलकत्ते को जवाब देना आता है
लोहा लोहे को ही काटता है
बस शक्ल बदलनी पड़ती है।
बहुत पुराने थियेटर भी हैं यहाँ
पुरानी फिल्मों का इतिहास भी है
गायकों-नायकों की लंबी सूची भी है!

सड़क के कई हिस्से भी हैं जो
विभूतियों की स्वच्छता से लदे पड़े हैं
गंदगी नहीं है, गंदी बू है महज़
प्रदेश की राजधानी ही नहीं
देश की पुरानी राजधानी है
असले की बू भरी।

थोड़ी वया ना पछी

रात सुबक रही थी जब नींद टूटी
क्या हुआ कहाँ से सिसकियाँ सन्नाटा रही हैं
जबदस्ती क्यूँ उन्हें कंठ में ठूँसा जा रहा है?

पेशाब करते ना करते हवा हो चुकी थी खुमारी
पता करना होगा कहाँ है विलपती चारदीवारी
घर में है या संसार में है यह बीमारी?

एक-एक कमरा सूना था, मेरे के सिवाय
घर में कोई न था
सिसक रहा था खुद... मुझे पता न था?
क्या बकवास? और तो और
आईना गवाह न था।
घूरीं दीवारें, कोने, सोफे, अलमारियाँ
किताबें, कलमें,
चम्मच-कड़छियाँ
कौन बिलख रहा है एका[1] या
कौन-कौन है संगी?
नहीं सुनीं सिसकियाँ कभी इतनी नंगी!

परेशान था कि क्यूँ सुन रहा हूँ ये बेकार की आवाज़ें
जिनका अता-पता नहीं, सिर-पैर नहीं... कोरी धोखेबाज़ी!

लपका मोबाइल को, कहीं अलार्म ही 'लो बैटरी' बिलख रहा हो
तनहाई ज़िन्दगी की सच हो रही हो...!

बंद था सेट, बेजान थीं सलवटें चादर-तकिये पर
कहीं नामो-निशान न था
न रूँआसी तकलीफ,
पिछला कोई अफसोस न था
जो बढ़कर बन जाये सिसकी, ऐसा कोई ख्याल न था।

कहीं हवा में हिल रही बेहिस खिड़की तो नहीं?
या आँगन में कहीं सीढ़ी-चिपकी कोई पत्ती तो नहीं?
खड़खड़ाती साइकिल की पंचर रबर-नस तो नहीं?
कई अंदेशे उभरते-मिटते आवाज़ के अंदाज़ बने
कई चेहरे-मोहरे मिलते-जुलते राज़ बने
कहाँ है? किस सिम्त से? कुछ पता तो चले
या भर चुकी है फिज़ाँ में, सारी खुदाई में सुबक?

यह क्या तिलस्म है... अब इसका क्या हिसाब बने?
किससे पूछूँ कि सुन रहा है तू ? कोई पास नहीं
या कर्ण-दोष है
मेरी सिसकी ही सुनाई पड़ती मुझे!
या जाँ सिसक रही है, मुझे होश नहीं...
नींद में हूँ? सिसकती रहती है?
जगे में, काम में दबी रहती है!
घुटी-घुटी ही यकीनन लगी रहती है!
बहुत गौर से जब कान बढ़ाओगे इसे सुनने को
साफ सिसकी ही नज़र आएगी
शक्ल धरती की उभर आएगी।

मजबूर था सोचने को
मजबूर था सुनने को महीन एक-तार
थरथराता कंठ
आणी शेवटी काय झाले?[2]
मिला रहा था बार-बार अपना वजूद उससे
शायद जुड़ जाए थोड़ी वया ना पछी[3]
धरती...।

---

1. एका (बंगाली) = अकेला **2.** आणी शेवटी काय झाले? (मराठी) = और आखिर में क्या हुआ? मराठी कवि लोकनाथ यशवंत की कविता **3.** थोड़ी वया न पछी (गुजराती) = थोडी देर बाद।

गर्मी कह रही है

गर्मी कह रही है आओ, ऐसा न सेंक दूँ
कि मुर्गे की शक्ल बेहतर हो जाए
चील देख रहे हो, बैठती है नीचे?
कहाँ–कहाँ ऊँचाई छान रही है, गर्मी के मारे।

पेड़ काली वस्तु हो गये हैं
चिड़ियों–गिलहरियों खातिर पानी भी नहीं छोड़ते
हवा आते हड़प लेते हैं
किसी के लिये नहीं छोड़ते।

धरती का अंग–अंग अंगार बना
सेंक ऊपर फेंक रहा
भुना जाओ राजस्थान के चनों–मानिंद
बिहार का चमकी (बुखार) लीची से जनमा
घैला[1] सिर पर पानी उझला[2] तौ कोप शांताया
बना दिमागी ज्वर!

नेताओं के भत्ते–पेंशन का मामला ठंढाया
पस्त लोकतंत्र गया हिम्मत हार।

किसी से गर्मी कह रही पंजाब न जाना
बिजली–पानी–सड़क सब खस्ता हाल

यहीं रुको चंडीगढ़ में,
ऐसा न सेंक दूँ कौए की आँख गर बनी रहे
दीठ तुम्हारी निकले!
हर छाया पर ठिठके,
हर छबील फिसले,
हरी जगह खिसक ले, पर सुकूँ ना मिले।
गर्मी बिखेरे भर–भर तसले[3]।

---

1. घैला (देसवाली) = घड़ा **2.** उझला (देसवाली) = उलटाया
3. तसले (देसवाली) = पतीले

चक्रव्यूह

उधर से घुसना होगा, जिधर से सब निकलते हैं
ओ अर्जुन-औलाद!
यह आज का चक्रव्यूह है,
भेदकर निकल आना सही सलामत।

खड़ा रहने दो महारथियों को घेरा डाले
चलाते हैं पीछे से भाले, देखते रहें चारा डाले
पंछी चुगने की नई जुगत निकाले
ओ सुभद्रा-पुत्र, नहीं तुम द्रौपदी-पुत्र, सावधान।

काँचीपुरम्

काँचीपुरम लाटरी के टिकट नहीं, फूल बेचता है।
चौराहे के, जो बस अड्डे की तरफ खुलता है
गले एक नन्हा लाल खत-डब्बा झुला रखता है।
कभी कोई चिट्ठी प्रभु के नाम पड़ी मिलेगी
पथरीले सपनों की आँखों में नहीं
ताज़ी कलियों की मालाओं में झाँकता है काँचीपुरम!

तमिल है तो ईलम है, इल्म है
ठूँसा पड़ा है लॉजों, मंदिरों, दवाई दुकानों से चौराहों
जैसे सिले बंद पड़े हैं काँचीपुरी मुँह और बदन
पर घुसते ही घर खुले
अंदर भीड़ी[1] इमारतों के, जगह ही जगह
गंदगी दिखाने के लिये दरवाजे
और भीतर साफ-सफाई चौकस तरह-तरह।

काँचीपुरम् की आधी शक्ति चा में चीनी घोलते
हिला-हिला निकल जाती है
शिव और विष्णु काँची के बीच की धरती
इतनी जोर धड़कती है
बाटा का पाट्टा[2] बन जाता है।

---

1. भीड़ी= सँकरी **2**. पाट्टा = तमिल लिपि में बाटा

वल्लमकली

पक के फूल गये हैं केले
इन्हें ब्रह्म-हवि कर दो
दाँत रगड़ते कौर ब्रह्म में विलीन होंगे
एक ऊर्जा नि:सृत होगी
जो तुम्हारे मुखमंडल से विकीर्ण होगी
भूखे नहीं लगोगे!
एक दिव्य-दाह से परिपूर्ण होगी काया
उठो शूर साहसी जसबीर!
निकल पड़ो जसबीर!
रोज़गार तुम्हारे वास्ते बैठे नहीं रहेंगे।
तुम्हें उनके लिये बैठना होगा
खड़ा होना होगा, तेज़ चलना होगा
घूमना होगा, भागना होगा, नाचना होगा
पलटवार करना होगा
यह रोज़गार है, अचार नहीं कि चाटकर
फिर बिर्नी में डाल दिया!
भुजाली के जैसा मूठ पर कसना होगा
झटक बाहर लहराना होगा एक ही खींच में
दिखाना होगा अपना चेहरा
भरपूर आत्म-विश्वास, संतोष और प्रज्ञा से दीप्त
इंटरव्यू करते पर्सनॉल्टी विशेषज्ञ मनोरोगियों को
कि लाख बेरोज़गारी के तूफानों में भी नहीं डूबने दी
अपनी वल्लमकली--- केला नाव
अपनी बनाना बोट।

31 दिसंबर सूरज नाल[1]

सूरज देख रहा है,
मैं मूँगफली फोड़ रहा हूँ फूलों पर
देख रहा हूँ
सूरज सर्दी फोड़ रहा है धरती पर
निस्तेज भद्दी-सी दिसंबरी ओढ़े।

उसकी ओर मुँह बा दाने फाँकता
छिलके सौंपता क्यारी पर
वह झाँकता।
आखिरी दाना आखिरी फली का, छूट
जा गिरा धरती पर
वह मुस्काया
खिलखिलाया मेरे डूबे चेहरे पर।
आखिरी दिन साल का गिरा
फिसल उसके हाथों से
खिलखिलाया मैं भी,
डूबने चला सूरज।

1. नाल (पंजाबी शब्द) = के साथ।

सर्दियों में

चाय एक धूप की तरह होती है
गर्म हो तभी इज्जत करते हैं।
सर्दियों का सुख धूप है।

कामवाली कह रही है, धुँध है
धूप छोड़ कर चली जाती है
धुँध हो पाला कम पड़ता है।

धूप ने तुमको चुन लिया है
कान के बूँदों पर झूलती है
धरती पर सात रंग उतरते हैं।

धूप को क्या पता

(क)

धूप को क्या पता
कोई कहाँ तक झूठ बोलता है
वह बरोबरी का दर्जा देती है।

पिल्ले हैं, बदन खजुआ नहीं पाते
तो सड़क पर लेट रगड़ते हैं
गरमाई नहीं अभी।
कुत्ती छोड़ गई।
बड़े होंगे, आपस में ही रिश्ते कायम करते
धूप को क्या पता?
नहीं, कहलवाती किसी से
जैसे उन्हें सबक दे
नैतिकता भूख से कीमती होती।

(ख)

हवा चल रही है धूप खिसकाती
धकेलती लगती स्कूटर चालक को
स्कूटर चल रहा है हवा धकेलता
सरकाता लगता है धूप को।
धूप खड़ी खिलखिलाती हवा पर
सरकती मुस्काती लगती चालक पर।

ड्रामा

गाड़ी जगह घेरती है
पेड़ जगह घेरता है
पेड़ काट दोगे
और गाड़ी?

प्रदूषण है, पेड़ लाओ
पेड़ चाहिये... पेड़ चाहिये!
जगह कहाँ है?
गाड़ी हटाओ... गाड़ी हटाओ... प्राण बचाओ।
गाड़ी बढ़ गई।
और पेड़?
अभी तो बिरवा है!

पछुआ

(क)

ठंडी हवा तो पहले भी होती है
धूप में कुनकुना रही होती है
सूरज ढलते ही पारे का पैर
गड्ढे में पिसल जाता है
चीस निकलती है
पछुआ कँपाने लगती है।

थोड़ी देर में लौट आए हो यादों की छाँव
पछुआ अब क्या कहेगी।

(ख)

हवा रुकी है तो कँपकँपी थमी है
वरना बर्फ की छुरी बह रही थी!
कहीं बर्फ जमती है
पारा थर्राकर नीचे गिरता है
पानी तो शून्य पर जमा होता है।
हवा खोखली हो जाती है गर्माहट खोकर
मरी तो पहले से थी, ऑक्सीजन बिना
चल पड़ती है खोजने नीचे
तलहटियों की तरफ।

सागर!

सागर! तेरी कुछ बूँदें ही ले पाऊँगा
बहुत नमक है, ज्यादा लेकर पछताऊँगा।
यह सच है, तू अथाह
तेरी गहराई इस कद से
जीवन-भर न थाह पाऊँगा
इन बाँहों से विस्तृत सीमा, जैसी तेरी
पार बोले तो, तैर-तैर कर मर जाऊँगा
तेरे गुण, मोती... भरपूर खजाने
कोशिश चाहे लाख करूँ, न वर पाऊँगा
न अपने तरकस में कोई अग्नि-बाण है
दो, न दो रास्ता तो क्या कर पाऊँगा?

अलार्म

अलार्म कई-कई बार बजकर भी
नींद भेद न पायेगा
तामस जालों की परतों की जकड़ तोड़ न पायेगा।

हो एक प्रमाद तो छूटे भी
यहाँ लिस्ट लगी लंबी-सी है
मिट्टी की देह तो एक ही है
बणतर सबकी अपनी-अपनी।

उसी तरह धर दो करीने से हर चीज़
जैसी रक्खी थी पहले
पता ही न चले कोई आया था
यहाँ
चला गया ज़िंदगी गुजार।
बस लगे, एक आत्मा उतरी थी।

चाँद सिर पर है आधकटा

चाँद सिर पर है आधकटा
जैसे सीएफल का एक कुंडी जल रहा
प्रकाशमान! दिव्य भाई!
उजास फूटी पूरब तो भी अधला चंद्रमा
मीठी रौशनी सिर के ऐन ऊपर बिखेर रहा।
जानता हूँ शोर सूरज का, होगा अभी चहुँतरफा
भूल जायेंगे लोग किस तरह
फैला रहा था चाँदनी अधकटा
अभी भी प्रखर है तेरी ज्योत्सना
कोई देखे सही सिर उठा।

चाँद! सचमुच तू वीर
तमाम छायाओं से ग्रस्त होता भी
रहता अँधेर मिटाने में डटा... धन्य तू!
ग्रहण लगते, निगल लेते राहु-केतु
तेरे जीवन में घटी
कितनी-कितनी बार अमावस्या
पर तू बेध देता।
पार कर लेते सारी बाधायें,
भर देता फिर हर माह
भरपूर मीठी उज्जवलता से अमा।

बढ़ती जायेगी सफेद रौशनी
कम होती जायेगी पीली रौशनी
फिर आधी सफेद नज़र आ रही तेरी छवि
फिर धूप में कहाँ दिखेगी यह भी
विस्मृत हो जायेगी रात जो थी
रंग तेरे रँगी।

भूल जायेगी दुनिया कि आकाश में
सर पर था एक प्रकाश
अधकटा था, उजला था पर
जिसकी रौशनी में न थी कोई कमी
अर्द्ध-छाया में भी हँसता-खिलखिलाता
बाँट रहा था हर खुशी!
जो कमता-घटता खत्म हो जाता भी ओझल
फिर पा लेता अपनी गरिमा लुटी-पुटी।

इतनी सहज नहीं होती, पा लेनी हार कर
एक बार वापस फिर अपनी राज्यश्री।

बंगाल की खाड़ी

बंगाल की खाड़ी का दबाव यहाँ खड़ा हो गया है
पौधों की जड़ों में जमा पानी मिन[1] लो
वर्षा कितने सेंटीमीटर तक हो चुकी
अभी गोपालपुर पार नहीं किया
बेहरा ने तीतलागढ़ छूने नहीं दिया
और प्रवीण ने भुवनेश्वर
क्या करता तूफान?
यहाँ आया चंडीगढ़ में तो तादाद बेइंतहा बढ़ी
बच्चकुटिया[2] जाने वालों की।

---

1. मिन (पंजाबी शब्द) = नाप 2. बच्चकुटिया (पाली शब्द) = संडास

ऐसे मोहरे हो

तुम ऐसे मोहरे हो जिसे दोनों तरफ से खेला जायेगा
पूरी दरिंदगी से पेला जायेगा
जीवन-भर तुम्हें सीखना होगा।
सिख होओ न होओ अपने मन के
तौलिये भी हो औरों के तन के
गंदा हाथ पोंछेगा हर कोई।

मर जाओगे तो लाश खोखलीकर
उसमें तंबाकू ढकेला जायेगा।
तकलीफ होती है न तुमको ज्यादा ही धुएँ से?
तुम्हारी देह का हुक्का बनाने तुम्हारा ही चेला जायेगा!
तुमको ज़िंदा फूकेंगे सिगरेट बनाकर!

बहुत पगड़ी-पगड़ी करते हो कटार छुपाकर?
खप्पर उतरवा लिया जायेगा
धड़ अलग होगा दफन, सर अलग दाह
देखना दो जगह तुमको फूँका जायेगा।

सवारी

(क)

सवारी है कि फुल जाना नहीं चाहती
ऑटो है कि एक-एक के लिये लाले हैं!

महावीर चौक उड़ानपुल तले
चालू इंज़िन, हैंड ब्रेक दे
निकल पड़ता है खोजने
गाड़ी-बैठे उसके राम के लिये जो साथ
जल्दम जल्द सागर पार
सीता तक पहुँचाये।

(ख)

संपर्क करने की जिससे भी कोशिश कर रहा है
वह असमर्थ है
कोई दरवाजे से सटकर खड़ा है
कोई दरवाजे पे डट के खड़ा है
अंग्रेजी में माइंड द गैप करता है
हिन्दी में सावधानी से उतरता तक नहीं।

बीबी का मकबरा[1]

बाँझ के लिये नहीं यह मकबरा
क्योंकि आजमशाह की माँ का है।

खुद की जिम्मेवारी पर लोग
जूते-चप्पल उतार भीतर जाते हैं
राष्ट्रीय एकता का पखवाड़ा
बीबी के मकबरे पर मनाते हैं
पहली सीढ़ी से ही नोट-रेज़गारी चलते
बीच मकबरे तक चलती जाती है।

दिलरस दिल्ली तक नहीं पहुँची
औरंगाबाद बसाकर छोड़ गया
सियासत का सिक्का खोटा भी चलता रहा
आगरे ताजमहल बनता रहा
मराठवाड़ी रियासत का पैसा यहीं लगा।

जिनकी बाजूयें काट दीं ताज उसारते
वे गये बीबी के मकबरे बनाने।

---

1. बीबी का मकबरा = औरंगाबाद का एक स्मारक

सिद्धार्थ उद्यान

धातु की पंद्रह फीट ऊँची
साढ़े तीन टन वज़नी काँसे की बुद्ध-मूर्ति

आओ हम पौ का फटना देखें
एक बदला बहुत ही घनिष्ठ हो गया है
नारियल-छत्र से
मुर्गे विभिन्न दिशाओं से
पहली किरण लाँघते बाँगते हैं
बकरियाँ रास्ते से उठ खड़ीं
झूमने लगे हैं खोपरे
लेल्ले[1] मुँह मारने चले।

बेशक आमों-सी लटकी रहें चमगादड़ें
कंक्रीट के बेंच भी उन पेड़ों-तले जर्ज़र हो जाते हैं
नींद से पहले सुबह वे कितना चिल्लाती हैं
कौओं के कान कटने लगते हैं
चिढ़कर वे ठूँगें मारते हैं
विद्यापीठ बिना वृक्षों के नहीं शोभता।

---

1. लेल्ले (पंजाबी) = मेमने

आधे दुख नींद झाड़ देती है

आधे दुख नींद झाड़ देती है, आधे पानी
मानुष तैयार हो जाता है रोज़, दुहराने कहानी
इधर टूटी, उधर फूटी... चले किस तरफ
रफ्तार तेज़ है, सड़क पुरानी।

दुनाली है ज़िंदगी
कंधे तोड़ देती है आगे दागती
झटकती पीछे गोली जो हो कोई
अव्वल तो आँख साधती, निशाने बेमानी।

नज़र रही कहाँ?
न दूर की, न नगीच[1] की
रौशनी चमकाती चीज़ पहचानी
सूत काट-काट, आँख न रटी सूई की
टाँकने थे काज, बेकार बटनदानी!

---

1. नगीच = नजदीक

धूप के इन दिनों

(क) खाली बोतल

धूप के इन दिनों खाली बोतल भी एक सहारा है
वैसे कोई थैला होता पीठ पर
ठूँस-ठूँस कर भरी जा सकती रौद
उन दिनों के लिये
दाँत किटकिटा रही होती हैं बोतलें जब।

ढो लेता सूरज 44 उन भारतीयों को
जो चुने गये मंगल ग्रह की यात्रा हेतु
थैला ठूँस-ठूँस हजार

(ख) घायल कुर्सियाँ

पढ़ाकूओं की कमरों ने हिल-हिल
कुर्सियों के बेतों को क्या हाल किया
क्या दुर्गति की चूतड़ों ने प्लास्टिक बुनावट की
इकट्ठी अब घायल कुर्सियों का इलाज हो रहा लाइब्रेरी में
टाँगें भी कई हिलती हैं पढ़ाई के दौरान!

इतिहास

ढोते हैं, दो पत्थर होते हैं
एक जो नींव रखी जाती है
एक जो फीता कटता है इमारत का
तारीख और आला अफसर का
नाम-पद
पत्थर इतिहास नहीं होते
हँसते हैं या रोते हैं
पत्थर-इतिहास।

कभी यहाँ आया था तो सोचा था
फिर आऊँगा
फिर आया तो याद आया
जो सोचा था
यहाँ जो आया था
कितना कुछ बंद मिलता
वक्त जब खोलता मुट्ठी।

आँख बंद होते ही

आँखें बंद होते ही, मन भागने लगता है
कहाँ से कहाँ, पर्दा तन जाता है
तन मुर्दा जाता है
सरपट उभरते चित्र–ध्वनियाँ–आकार
कहाँ से कहाँ।
खुली आँखों अलग, मुँदी अलग संसार।
सजग कितने ऊँचे
नींद कितनी गहरी
चेतस् अवचेतस् के मिले तार।

नाम चमकता है
सदी की सीलन नहीं मिटती।
ढलान पर उतरते हम
ऊँचाईयों में दफन हो जाते हैं
साथ इमारतों की छतें टॉप–फ्लोर।
चाहे उम्र ही क्यों न हो
ढलान पर कदम छोटे होते–होते
नज़र की सुरंग में शामिल हो जाते हैं।

आवाजें कई हैं

आवाजें कई हैं, नज़र कोई नहीं
कई बोल रहे हैं, सामने नहीं आते
कौन क्या कहना चाहता है, साफ नहीं
साहस नहीं रहा आवाज़ों में
उसके बिना शोर हैं आवाज़ें।

कोई बोले... नींद करारी चीज़ है
थकान जैसे पहलवानों को बजाड़ देती है!
कोई––– जैसे बीयर पीकर बहा देते हो
गुस्सा पीकर बहा दो!
जैसे हँसते–हँसते जान ले ली
वैसे आँखों–आँखों काम कर दे!

कोई नहीं बीड़ा लेकर बोलने वाला, जैसे
''आमी सुभाष बोलछी''
''मैं पाश[1] बोलदाँ।''

---

1. पाश = पंजाबी का क्रांतिकारी कवि

उमस जारी है

अलस्सुबह ऊमस जारी है
गरमी की मीठी आरी है।

कहीं डाल दो, सूख ही जाते हैं
गरमी के दिन कँपाते हैं।

कहीं डाल दो, सूख जायेंगे
कपड़े हैं, भँपायेंगे!

गर्मियाँ हैं काट खायेंगी पानी
नंगे हैं, लजायेंगे!

सूरज चढ़ा रहता, दिन न ठंडाता
चाँद गोल जरा न लुभाता।

बात समझ नहीं आई, फिर भी मुंडी हिलाई
देश बन रहा डिजिटल, देखी कीचड़-कमल-सफाई।

देखत-देखत

देखत-देखत अँखियाँ बूढ़ हो गईं
धर्म संस्थापनार्थ आओगे?
दुष्कृतान तो बढ़ ही रहे
संख्या में भी, ताकत में भी
खुले में भी, छुपे में भी।
रचे-रचाये तुम्हारे डायलौग बोल-बोल तर रहे
काम कर रहे
अभ्युत्थान का हिज्जे नया-नया गढ़ रहे!

अब तो जेबा[1] कि तुमको ही बूझना होगा
कहीं विनाश न हो जाये धर्म का ही
तुम्हारे हाथों
सोच-सोच काँप रहे।
बूढ़ आँखों तक रहे।

---

1. जेबा (भोजपुरी) =जो है कि

गॉड इज़ वन

न भी लिखा होता तो पता था
पर तुमने गाड़ी पर लिखा है, तो पढ़ते हैं
और भी जहाँ लिखोगे, पढ़ लेंगे
बाकी नहीं लिखा होता, तो वन ही रहता
जगह–जगह लिख देने से भी कोई फायदा नहीं।
अच्छा होता कि मंदिर में घुसते
चर्च–गुरुद्वारे में घुसते, बेतोड़–फोड़
अकबर भी वही होता, छोटा–बड़ा नहीं होता
जो वन होता।
तराजू पर मत चढ़ाओ, कोई ऐसा बाट नहीं है
जो तौले उसको, यहाँ चाहे इंग्लैंड में।
कोई ऐसा बम नहीं है, अरब चाहे फारस में
उड़ाये उसको।
कोई ऐसा दम–खम नहीं, कब्र चाहे बहिश्त में
हटाये उसको।
घॉड इज़ वन, लिख कर जान लो
चाहे जानकर लिख लो
इसलिये वन को
सबको अपने–अपने हिसाब से
वनने दो,
अपना वन उन पर न थोपो, न तनने दो।

संसार में कोई ऐसा विदेश है

संसार में कोई ऐसा विदेश है
आपके चरण–कमल नहीं पहुँचे?

यही है जो आतंक से बचा हुआ है।

देश आतंकित है इस तरह की आतंक–यात्राओं से
बड़े–बड़े आतंकवादी लोहा मान रहे
यही है जिसने आतंक को सही–सही समझा है, और बुद्ध ने दुख को।
जिसने खुफिया नहीं चाक्षुष दर्शन किया है
इसके विराट स्वरूप का।
रग–रग से वाकिफ है यह आदमी उसकी
भीतर–बाहर अच्छी तरह पहचानता है
यही है जो उसके बारे मन से लिख–बोल सकता है
चित्र आँक सकता है।
बोले तो दिखा भी सकता है उसे, पकड़वा भी सकता है।
आतंक और छुपा नहीं रह सकता
इसने बेनकाब ही नहीं
पूरे चेहरे के साथ उजागर कर दिया है।
आतंक अब इसे सलाम करेगा, कदमों पर झुकेगा
चरण–कमल परस धो–धो पीयेगा
आज या कल आत्म–समर्पण कर देगा
बस आपके वहाँ जाने की देर है
जहाँ आतंक–रहित सबेर है।